पाठ्यक्रम - १६

१६.अ मानवीय शुद्ध आहार - शाकाहार

जिससे शारीरिक - मानसिक पोषक तत्त्व प्राप्त हों, जिससे भूख मिटें उसे आहार कहते हैं। संसार में आहार को मुख्यत: दो भागों में बाँटा गया है-

१. शाकाहार

२. मांसाहार

शाकाहार का अर्थ - शोधे हुए अनाज, दालें, चावल, सूखे फल - मेवे, ताजे कच्चे-पके फल, साग - भाजी, दूध - दही और इनसे बने मर्यादित पदार्थों का आहार है। ऐसे भोजन से मनुष्य में दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य, बलवान शरीर, दया, सरलता, पारस्परिक सहयोग और अहिंसा आदि शुभ भाव उत्पन्न होते हैं।

मांसाहार का अर्थ - प्राणियों की हत्या करके (अथवा मृत प्राणी शरीर से) उसके शारीरिक अवयवों (माँस - कलेजी - हड्डियाँ आदि), अण्डे, वासी, रसहीन - अधपके, दुर्गन्धित, सड़े या सड़ाए गए अपवित्र नशीले आदि पदार्थों का सेवन मांसाहार है। यह मनुष्य की बुद्धि - विवेक को भ्रष्ट कर उसे कुसंस्कारों की ओर ले जाता है, इससे शरीर दुर्गन्धित व भारी हो जाता है। प्राय: मनुष्य क्रोधी, क्रूर और अनाचारी बन जाते हैं।

मांसाहारी जीवों की शारीरिक बनावट

प्राकृतिक रूप से मनुष्य शाकाहारी है उसकी शरीर-रचना मांसाहारी जीवों से भिन्न है। मांसाहारी जीव अँधेरे में देख सकते हैं, उनके जबड़े अलग प्रकार के होते हैं, उनके दाँत, पंजे, चोंच बहुत नुकीले होते हैं, वे मांसाहार करने के कारण प्राय: जीभ से पानी पीते हैं। उनकी सूंघने की विलक्षण क्षमता होती है, उनकी आँतों की बनावट भी अलग प्रकार की होती है। इन स्पष्ट भेदों के बाद भी प्रकृति से शाकाहारी मनुष्य अज्ञानता, धर्मान्धता, जीभ की लोलुपता, मांसाहारियों की संगति और आग्रह तथा स्वयं को आधुनिक दिखाने के चक्कर में मांसाहारी बनता जा रहा है। कुछ लोग मांसाहार को गर्व के साथ आधुनिकता से जोड़ते हैं। यह मांसाहार ही आज संसार की अशान्ति और दुर्गति का बड़ा कारण बन गया है।

वनस्पति और मांस में अन्तर

एक इन्द्रिय जीव वनस्पति और मांस में बहुत अन्तर होता है। प्रथम तो मांस का उत्पादन ही पंचेन्द्रिय आदि जीवों की हत्या से होता है फिर मांस वनस्पति की तरह अग्नि संस्कार से प्रासुक नहीं होता उसमें निरन्तर तज्जाति निगोदिया जीव उत्पन्न होते रहते हैं। मांस पूर्णत: अभक्ष्य है। लौकिक व्यवहार में भी एक पेड़ काटने पर उतना दण्ड नहीं दिया जाता जितना एक मनुष्य की हत्या करने पर। अनाज फल साग - भाजी आदि देख कर किसी को भी ग्लानि नहीं होती है जब कि मांस की दुकानों पर लटका या रखा हुआ मांस देखकर अधिकांश लोगों को घृणा होती है। वहाँ की दुर्गन्ध से लोग नाक बंद कर लेते हैं।

मांस को शक्तिवर्धक मानना एक भ्रान्त धारणा है, सृष्टि के प्राय: सभी बलशाली, परिश्रमी और सहनशील प्राणी जैसे हाथी, घोड़ा, ऊँट और बैल आदि पूर्णत: शाकाहारी हैं। शाकाहार से जहाँ शक्ति बढ़ती है वहाँ मांसाहार से उत्तेजना और क्रूरता। मांसाहार की अपेक्षा कई गुने अधिक शरीर - पोषक तत्त्व शाकाहारी पदार्थों में पाए जाते हैं कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं -

बकरे के मांस में प्रोटीन २१.४% है तो सोयाबीन में ४३.३ % है।
मांस में कार्बोहाइड्रेड नहीं है जबकि गेहूँ में ६३.४% है।
मांस में फैट ३.६% है। जबकि नारियल में ६२.३% है।
फाइबर मांस में नहीं जबकि अमरूद में ५.२% है।
मांस में मिनरल १.१% है। जबकि चावल में ६.६% है।
मांस में कैलोरी 118 है जबकि मूंगफली में 570 है।

प्रभु देव तुम्हारे पवित्र मुख से नि:श्रृत जो शीतल वाणी।
जग-जन मन के मल को धोती अत: कहाती जिनवाणी।।
जयवन्तो माँ जग में तब तक जब तक सूरज-चाँद रहे।
शीश नवाते कर्म हरो माँ अब तक हम विषयान्ध रहे।।

प्रकृति का संतुलन

''यदि पशुओं को ना खाया जाए तो पृथ्वी उनसे भर जाएगी'' यह मानना निराधार हैं क्योंकि पशुओं का संतुलन प्राकृतिक रूप से बना रहता है। उनकी कामेच्छा और प्रजनन का समय भी सहज निर्धारित रहता है। फिर जिन प्राणियों का मांस नहीं खाया जाता, क्या उनकी संख्या बढ़ी है? जैसे शेर, हाथी, कुत्ता, बिल्ली अर्थात नहीं बढ़ी बल्कि कहीं-कहीं तो हाथी, शेर आदि की प्रजाति लुप्त होने के कगार पर पहुँच रही है यदि कृत्रिम रूप से प्रजनन न कराया जावे तो उनकी भी संख्या नहीं बढ़ेगी।

शाकाहार आर्थिक दृष्टि में

''यदि मांस न खाकर केवल अन्न ही खाया जाय तो देश में अन्न की कमी पड़ जायेगी।'' ऐसा सोचना भी ठीक नहीं है, क्योंकि देश में अन्न की पैदावार पर्याप्त मात्रा में होती है। दूसरी ओर अकेले अमेरिका में अधिक मांस प्राप्ति के लिए पशुओं को जितना अन्न खिलाया जाता है उतने से विश्व की आधी आबादी का पेट भर सकता है वहाँ औसत एक किलो मांस के लिए सोलह किलो अन्न खिलाया जाता है। अत: आर्थिक दृष्टि से भी शाकाहार सस्ता व श्रेष्ठ है।

दूध का पूर्ण सत्य-

आजकल कुछ चिंतक - वैज्ञानिक दूध को ''पतले - मांस'' की संज्ञा देने लगे हैं। यह उनकी अल्पज्ञता का सूचक है। दूध पूर्णत: शाकाहारी, शुद्ध एवं सम्पूर्ण आहार है।

दही अभक्ष्य नहीं है। अच्छी तरह उबले हुए (प्रासुक) दूध से बने दही में २४ घंटे तक वैक्टीरिया (जीवाणु) पैदा नहीं होते। जैनाचार्यों ने प्रासुक दूध, दही, पनीर आदि को जीवाणु रहित होने से सेवन योग्य कहा है। (दही से दही नहीं जमाए)

प्रासुक - जीव जिसमें निकल गए हैं अथवा निकाल दिए गए ऐसे पदार्थ प्रासुक कहे जाते हैं।

मर्यादित पदार्थ - जिसमें त्रस जीवों की उत्पत्ति न हुई हो, जो सड़ी-गली, विकृत, दुर्गन्ध युक्त न हो। ऐसी वस्तुएँ मर्यादित कहलाती हैं।

जैन दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त ग्रन्थ - षट्खण्डागम

१. कषाय पाहुड़ के बाद षट्खण्डागम ही दिगम्बर आम्नाय का द्वितीय महनीय ग्रन्थ है। जीव स्थान आदि छह खण्डों में विभक्त होने के कारण इसका ''षट्खण्डागम'' नाम प्रसिद्ध हुआ। यह कर्म सिद्धान्त विषयक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के छह खण्डों में पहले खण्ड के सूत्र पुष्पदन्त आचार्य (ई. १०६-१३६) के बनाए हुए हैं। बाद में उनका शरीरान्त हो जाने के कारण शेष चार खण्डों के पूरे सूत्र आचार्य भूतबलि जी (ई. १३६-१५६) ने बनाए थे। छठवाँ खण्ड सविस्तार रूप से आचार्य भूतबलि जी द्वारा बनाया गया है।

२. यह ग्रन्थ छह खण्डों में विभक्त है -

१. जीवट्ठाण (जीवस्थान) - इस प्रथम खण्ड में जीव के गुण-धर्म और नाना अवस्थाओं का वर्णन आठ प्ररूपणाओं में किया गया है।

२. खुद्धाबन्ध(क्षुद्र बन्ध) - इसमें मार्गणा स्थानों के अनुसार कौन जीव बन्धक है और कौन अबन्धक का विवेचन किया है। इस खण्ड में १५८२ सूत्र हैं।

३. बंध सामित्त विचय (बन्ध स्वामित्व विचय) - इस तृतीय खण्ड में कर्मों की विभिन्न प्रकृतियों के बन्ध करने वाले स्वामियों का विचार किया गया है। इस खण्ड में कुल ३२४ सूत्र हैं।

४. वेदना खण्ड - कृति और वेदना नामक प्रथम दो अनुयोगों का नाम वेदना खण्ड है। इस खण्ड में कुल १४४९ सूत्रों(के द्वारा किया) है।

५. वर्गणा खण्ड - इसमें स्पर्श, कर्म और प्रकृति नामक तीन अनुयोग द्वारों का प्रतिपादन किया गया है। कुल ७९१ सूत्रों का वर्णन है।

६. महाबन्ध - प्रकृति बन्ध, प्रदेश बन्ध, स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध का

भावना दिन-रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर वार हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
धर्म का परचार हो, अरु देश का उद्धार हो।
और यह उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के आचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
शान्ति सुख आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
रोग दुःख भय शोक ना हो, हे प्रभु! परमात्मा।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा॥
भावना दिन-रात मेरी....॥

विवेचन इस खण्ड में २४ अनुयोग द्वारों में विस्तार पूर्वक किया है।

समग्र जिनागम का प्रतिपादक सूत्र ग्रन्थ - तत्त्वार्थ - सूत्र

१. आचार्य उमास्वामि (द्वितीय शताब्दी) द्वारा रचित संस्कृत भाषा में सूत्र-शैली का यह प्रथम सूत्र ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्राचीन नाम 'तत्त्वार्थ' था। सूत्र शैली में निबद्ध होने से उत्तर काल में इसका तत्त्वार्थ सूत्र नाम पड़ा। इस ग्रन्थ में जिनागम के मूल तत्त्वों को बहुत ही संक्षेप में निबद्ध किया है। इसमें कुल दस अध्याय और ३५७ सूत्र हैं इसे मोक्षशास्त्र भी कहते हैं।

२. इस महान ग्रन्थ में करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का सार समाहित है। साम्प्रदायिकता से रहित होने के कारण यह दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही साम्प्रदायों में कुछ पाठ भेद को छोड़कर समान रूप से प्रिय है। इसके मात्र श्रवण अथवा पाठ का फल एक उपवास बताया है।

वर्तमान में इस ग्रन्थ को जैन परम्परा में वही स्थान प्राप्त है, जो हिन्दू धर्म में ''भगवद् गीता'' को, इस्लाम धर्म में ''कुरान'' को और ईसाई धर्म में ''बाइबिल'' को प्राप्त है। इससे पूर्व प्राकृत भाषा में ही जैन ग्रन्थों की रचना की जाती थी। इस प्रकार तत्त्वार्थ सूत्र का वर्णित विषय जैन धर्म के मूलभूत समस्त सिद्धान्तों से सम्बद्ध है। इसे जैन सिद्धान्त की कुंजी कहा जा सकता है।

भजन

आगे-आगे अपनी ही अरथी के मैं गाता चलूँ।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
पीछे-पीछे दूर तक दिख रही जो भीड़ है।
पंछी शाख से उड़ा, खाली पड़ा नीड़ है॥
सृष्टि सारी देख ले, पर्याय ही अनित्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
जिनको मेरे सुख-दुखों से कुछ नहीं था वास्ता।
उनके ही कांधों पर मेरा कट रहा है रास्ता॥
आँख जब मुंदी तो कोई शत्रु है न मित्र है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
डोरियों से मैं नहीं बंधा मेरा संस्कार था।
एक कफन पर ही मेरा रह गया अधिकार था॥
तुम उसे उतारने जा रहे यह सत्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
आपके अनुराग को आज क्या ये हो गया।
जिस क्षण चिता चढ़ा, महान कैसे हो गया॥
जो अनित्य वो ही नित्य, नित्य ही अनित्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
मैं अरूपी गंध दूर उड़ गई थी फूल से।
लहर थी चली गयी थी, दूर मृत्यु कूल से॥
सत्य देख हँस रहा कि जल रहा असत्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
मैं तुम्हारे वंश से बिछुड़ा हुआ हूँ देवता।
आत्म तत्त्व छोड़ कर मैं जगत को देखता॥
ये अनादि काल की भूल का ही कृत्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥

संस्मरण - सहना सीखो

बच्चे जब अपने काम में मस्त हो जाते हैं तो उन्हें न तो शरीर का ध्यान ही रहता, न ही घर-बार का। बस अपने में मस्त।

बात उस समय की है जब बालक विद्याधर अपने बाल सखाओं के साथ खेलकर वापस अपने घर आते थे। घर आकर अपने परिवार के सदस्यों से कहते आज तो बहुत थक गया-आप लोग मेरे पैर दबाओ तो परिवार के लोग हँसकर जवाब देते-क्या बूढ़ा हो गया जो इतना-सा दर्द भी सहन नहीं कर पाता। सहना सीखो बेटा .... सहना सीखो।

बस उस समय माता-पिता की शिक्षा जीवन में अपनाई एवं आज हर प्रकार के सुख-दुःख अकेले ही सहा करते हैं। क्योंकि

दूसरों का दुःख सहा नहीं, कहा जाता है,
एवं अपना दुःख कहा नहीं, सहा जाता है।

इसीलिए आज वे रोगादि बाईस परीषह समता के साथ सहन किया करते हैं।

समय कैसा चल रहा है, मेरे मित्र कैसे हैं, जहां मैं रहता हूँ वह देश कैसा है, मेरी आमदनी क्या है और मेरे खर्च क्या हैं, मैं कौन हूँ और मेरी शक्ति कितनी है? इन बातों पर जो मनुष्य बार-बार विचार करता है वह श्रेष्ठ है।

पाठ्यक्रम - १६

१६.ब संसार अथवा मुक्ति का कारण - ध्यान

किसी एक विषय पर मन को केन्द्रित करना ध्यान है।

ध्यान के चार भेद हैं -

1. आर्तध्यान 2. रौद्रध्यान
3. धर्म्यध्यान 4. शुक्लध्यान

इनमें आदि के दो ध्यान अशुभ हैं उनसे पाप का बंध होता है। शेष ध्यान शुभ हैं, उनके द्वारा कर्मों का नाश होता है।

1. आर्तध्यान - आर्त का अर्थ है पीड़ा, पीड़ा में कारणभूत ध्यान आर्तध्यान है। शरीर का क्षीण हो जाना, कान्ति नष्ट हो जाना हाथों पर कपोल रख पश्चात्ताप करना, आँसू बहाना इत्यादि और भी आर्तध्यान के बाह्य चिह्न हैं।

आर्तध्यान के चार भेद -

1. इष्ट वियोगज आर्तध्यान - अपने प्रिय पुत्र, स्त्री और धनादिक के वियोग होने पर उनकी प्राप्ति के लिए संकल्प अर्थात् निरन्तर चिन्तन करना इष्ट वियोगज नाम का आर्तध्यान है।

2. अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान - दुखकारी विषयों का संयोग होने पर यह कैसे दूर हो, इस प्रकार विचारते हुए विक्षिप्त चित्त हो चेष्टा करना अनिष्ट संयोगज नाम का आर्तध्यान है।

3. पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान - वातादि विकार जनित शारीरिक वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत् चिन्ता करना पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान है।

4. निदान आर्तध्यान - पारलौकिक विषय सुख की आसक्ति से, भविष्य में धन-वैभव आदि प्राप्ति के लिए सतत् चिन्तन करना निदान नाम का आर्तध्यान है।

2. रौद्रध्यान - रुद्र का अर्थ क्रूर आशय है इसका कर्म या इसमें होने वाला भाव रौद्रध्यान है।

रौद्रध्यान के चार भेद -

1. हिंसानन्द रौद्र ध्यान - तीव्र कषाय के उदय से हिंसा में आनंद मानना हिंसानन्द रौद्रध्यान है, जैसे जीवों के समूह को अपने द्वारा अथवा अन्य के द्वारा मारे जाने पर हर्ष मनाना (टी.व्ही. आदि में चित्र देखकर भी), हार-जीत सम्बन्धी भावना करना, बैरी से बदला लेने की भावना।

2. मृषानन्द रौद्रध्यान - अनेक प्रकार की युक्तियों के द्वारा दूसरों को ठगने के लिए झूठ बोलने का भाव करते हुए आनन्दित होना मृषानन्द नाम का रौद्रध्यान है। जैसे-छल-कपट, मायाचार द्वारा धन लूटना आदि।

3. चौर्यानन्द रौद्रध्यान - दूसरे के धन को हरण करने का, चिन्तन करना चौर्यानन्द नाम का रौद्रध्यान है। चोरी आदि कार्यों में आनन्द मनाना इसी का रूप है।

4. विषय संरक्षणानन्द रौद्रध्यान - अपने परिग्रह में यह मेरा परिग्रह है। उसकी रक्षा के लिए संकल्प का बार-बार चिंतन करना विषय संरक्षणानन्द नाम का रौद्रध्यान है। क्रूर चित्त होकर बहुत आरम्भ-परिग्रह की रक्षा में मन लगाना, इसी ध्यान का रूप है।

3. धर्म्यध्यान - रागद्वेष को त्याग कर अर्थात् साम्य भाव से जीवादिक पदार्थों का वे जैसे-जैसे अपने स्वरूप में स्थित हैं, वैसे-वैसे ध्यान या चिन्तन करना धर्मध्यान है। पूजा, दान, विनय आदि करना, धर्म से प्रेम करना, चित्त स्थिर रखना आदि धर्मध्यान के बाह्य चिह्न हैं।

धर्मध्यान के चार भेद -

1. आज्ञा विचय धर्मध्यान - वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत आगम को प्रमाण मान करके यह ऐसा ही है इसी श्रद्धान द्वारा अर्थ का पदार्थ का निश्चय करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जैसे - पृथ्वी आदि जीव हैं।

2. अपाय विचय धर्मध्यान – दूसरों का दु:ख दूर हो जावे ऐसा निरन्तर चिन्तन करना अपायविचय धर्मध्यान है।

3. विपाक विचय धर्मध्यान – पुण्य-पाप के फल रूप सुख-दु:ख का विचार करना, विपाक विचय धर्मध्यान है। जैसे- गरीब और अमीर व्यक्ति को देख पूर्वकृत पाप-पुण्य का चिन्तन करना।

4. संस्थान विचय धर्मध्यान – तीनों लोक के आकार आदि का चिन्तन करना संस्थान विचय धर्मध्यान है।

4. शुक्लध्यान – ध्यान करते हुए साधु के बुद्धिपूर्वक राग समाप्त हो जाने पर जो निर्विकल्प समाधि प्रकट होती है, उसे शुक्ल ध्यान कहते हैं।

शुक्ल ध्यान के चार भेद –

1. पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल ध्यान – श्रुतज्ञान का आलम्बन लेकर विविध दृष्टियों से विचार करता है और इसमें अर्थ व्यञ्जन तथा योग का संक्रमण (परिवर्तन) होता रहता है। अत: इसका नाम पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल ध्यान है।

2. एकत्व वितर्क अवीचार शुक्ल ध्यान – श्रुत के आधार से किसी एक द्रव्य या पर्याय का चिन्तन करना एकत्व वितर्क अवीचार नाम का शुक्लध्यान कहलाता है।

3. सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाती शुक्ल ध्यान- कार्य वर्गणा के निमित्त से आत्मप्रदेशों का अति सूक्ष्म परिस्पन्दन शेष रहने पर सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ध्यान होता है।

4. व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यान – काय वर्गणा के निमित्त से होने वाले आत्मप्रदेशों का अतिसूक्ष्म परिस्पंदन भी शेष नहीं रहने पर और आत्मा के सर्वथा निष्प्रकम्प होने पर व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान होता है।

भजन

मात-पिता और गुरु चरणों में प्रणमत बारंबार।
हम पर किया बड़ा उपकार, हम पर किया बड़ा उपकार॥

माता ने जो कष्ट उठाया, वह ऋण कभी न जाय चुकारा।
उंगली पकड़ कर चलना सिखाया, ममता की दी शीतल छाया॥
जिनकी गोद में पलकर हम कहलाते हैं होशियार .....॥
हम पर किया .....॥
पिता ने हमको योग्य बनाया, कमा-कमाकर अन्न खिलाया।
पढ़ा-लिखा गुणवान बनाया, जीवन पथ पर चलना सिखाया
जोड़-जोड़ अपनी सम्पत्ति का, बना दिया हकदार.....॥
हम पर किया .....॥
तत्त्व ज्ञान गुरु के दर्शाया, अंधकार को दूर हटाया।
हृदय में भक्ति दीप जलाकर, प्रभु दर्शन का मार्ग बताया
बिना स्वार्थ ही किया करें, ये तीनों बड़े उदार .....॥
हम पर किया .....॥

आत्मा में अनंत शक्ति

प्रश्न उत्पन्न होता है कि आत्मा में अनंत शक्ति है तो उसकी अभिव्यक्ति क्यों नहीं? कर्म की आवरण शक्ति के कारण अनंत शक्ति वाली आत्मा भी आज चतुर्गति की ठोकर खा रहा है, आधि, व्याधि, उपाधि की भयानक आग में झुलसता रहा है।

एक बर्तन में पानी गर्म किया जा रहा था। नीचे की अग्नि पल-पल पानी को गर्म किए जा रही थी। पास में बैठी बहिन ने सोचा कि इस पानी में अग्नि को बुझाने की शक्ति है फिर वह आज क्यों झुलस रहा है। पूछा-जल देवता! समझ में नहीं आ रहा, जिस अग्नि को बुझाने की तुममें ताकत है, आज वह अग्नि तुम्हें कैसे जला रही है? पानी बोला- बहिन, तुम सुनना चाहती हो तो सुनो, इस अग्नि की कहाँ इतनी ताकत है कि वह मुझे जला सके। मैं एक मिनट में इसे ठंडा कर सकता हूँ पर अफसोस कि बीच में यह बर्तन पड़ा है। बस इसके कारण ही आज मेरा अणु-अणु तप रहा है।

यह रूपक है पानी की कहानी आप सुन चुके। आत्मा की भी यही स्थिति है। जल के समान आत्मा है, अग्नि के सदृश कर्म है और शरीर के सदृश बर्तन है। आत्मा कर्म के निमित्त से रागादि रूप परिणमन करता है, शरीर बर्तन का काम करता है। अत: शरीर की संगति से ही रागादि रूप परिणमन करता है।

अनंत शक्तिशाली आत्मा शरीर व कर्म की संगति से जल के सदृश विभाव रूप परिणमन कर संसार में भटकता है।

तूने जब पहला श्वांस लिया तब माता -पिता तेरे पास थे, और जब वे अंतिम श्वांस लें तब तू उनके पास होना।

भक्तामर स्तोत्र

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्, त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥25॥

अर्थ : (**विबुधार्चितबुद्धिबोधात्**) देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित बुद्धि-ज्ञान वाले होने से (**त्वम् एव**) आप ही (**बुद्धः**) बुद्ध हैं। (**भुवनत्रय-शङ्करत्वात्**) तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण (**त्वम् एव**) आप ही (**शङ्करः असि**) शंकर हो (**धीर!**) हे धीर! (**शिवमार्ग-विधेर्विधानात्**) मोक्षमार्ग की विधि के करने से (**त्वमेव**) आप ही (**धाता असि**) ब्रह्मा हो और (**भगवन्!**) हे स्वामिन्! (**त्वमेव**) आप ही (**व्यक्तम्**) स्पष्ट रूप से (**पुरुषोत्तमः असि**) मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हो।

तुभ्यं नमस्त्रि-भुवनार्ति-हराय नाथ!, तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमोजिन! भवोदधि-शोषणाय ॥26॥

अर्थ : (**नाथ!**) हे स्वामिन्! (**त्रिभुवनार्तिहराय**) तीनों लोकों के दुःखों के हरने वाले (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो, (**क्षिति-तलामलभूषणाय**) पृथ्वी तल के निर्मल आभूषण स्वरूप (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो, (**त्रिजगतः**) तीनों जगत् के (**परमेश्वराय**) परमेश्वरस्वरूप (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो, और (**जिन!**) हे जिनेन्द्रदेव! (**भवोदधि-शोषणाय**) संसार समुद्र को सुखाने वाले (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशैस्, त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्त विविधाश्रय-जात-गर्वैः, स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥27॥

अर्थ : (**मुनीश!**) हे मुनियों के स्वामी (**यदि नाम**) यदि (**निरवकाशतया**) अन्य जगह स्थान न मिलने के कारण (**त्वम्**) आप (**अशेषैः**) समस्त (**गुणैः**) गुणों के द्वारा (**संश्रितः**) आश्रित हुए हो और (**उपात्तविविधाश्रय-जातगर्वैः**) प्राप्त हुए अनेक आधार से उत्पन्न हुआ है अहंकार जिनको ऐसे (**दोषैः**) दोषों के द्वारा (**स्वप्नान्तरे अपि**) स्वप्न के मध्य में भी (**कदाचित् अपि**) कभी भी (**न ईक्षितः असि**) नहीं देखे गए हो तो (**अत्र**) इस विषय में (**कःविस्मयः**) क्या आश्चर्य है ? कुछ नहीं।

उच्चैरशोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-, माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्-किरणमस्त-तमो-वितानं , बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥28॥

अर्थ : (**उच्चैरशोकतरुसंश्रितम्**) ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित तथा (**उन्मयूखम्**) जिसकी किरणें ऊपर को फैल रहीं हैं, ऐसा (**भवतः**) आपका (**अमलम् रूपम्**) उज्ज्वल रूप (**स्पष्टोल्लसत्किरणम्**) स्पष्टरूप से शोभायमान हैं किरणें जिसकी और (**अस्त-तमो-वितानम्**) नष्ट कर दिया है अन्धकार का समूह जिसने ऐसे (**पयोधर-पार्श्ववर्ति**) मेघ के पास में स्थित (**रवेः बिम्बम् इव**) सूर्य के बिम्ब की तरह (**नितान्तम्**) अत्यन्त (**आभाति**) शोभित होता है।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे, विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्-विलसदंशु-लता-वितानं, तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहस्त्र-रश्मेः ॥29॥

अर्थ : (**मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे**) रत्नों की किरणों के अग्रभाग से चित्र-विचित्र (**सिंहासन**) सिंहासन पर (**तव**) आपका (**कनकावदातम्**) सुवर्ण की तरह उज्ज्वल (**वपुः**) शरीर (**तुङ्गोदयाद्रिशिरसि**) ऊँचे उदयाचल के शिखर पर (**वियद्-विलसदंशुलता-वितानम्**) आकाश में शोभायमान है किरणरूपी लताओं का समूह है जिसका ऐसे (**सहस्त्ररश्मेः**) सूर्य के (**बिम्बम् इव**) मण्डल की तरह (**विभ्राजते**) शोभायमान हो रहा है।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झर-वारि-धार-, मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥30॥

अर्थ : (**कुन्दावदात-चलचामर-चारुशोभम्**) कुन्द के फूल के समान स्वच्छ हिलते हुए चँवरों की सुन्दर शोभा से युक्त (**कलधौतकान्तम्**) सुवर्ण के समान कान्ति वाला (**तव**) आपका (**वपुः**) शरीर (**उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झरवारिधारम्**) उदीयमान

चन्द्रमा के समान निर्मल झरनों की जलधारा से युक्त (**सुरगिरेः**) सुमेरु पर्वत के (**शात-कौम्भम्**) स्वर्णमयी (**उच्चैस्तटम् इव**) ऊँचे तट के समान (**विभ्राजते**) शोभायमान होता है।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-, मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम् ।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं, प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥31 ॥

अर्थ : (**शशाङ्ककान्तम्**) चन्द्रमा के समान सुन्दर (**स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्**) रोक दिया है सूर्य की किरणों के सन्ताप को जिसने तथा (**मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम्**) मोतियों के समूह वाली झालर से बढ़ रही है शोभा जिनकी ऐसे (**तव उच्चैःस्थितम्**) आपके ऊपर स्थित (**छत्र-त्रयम्**) तीन छत्र (**त्रिजगतः**) तीन जगत् के (**परमेश्वरत्वम्**) स्वामित्व को (**प्रख्यापयत् 'इव'**) प्रकट करते हुए की तरह (**विभाति**) शोभायमान होते हैं।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-, स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः ।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्, खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥32 ॥

अर्थ : (**गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागः**) गम्भीर और उच्च शब्द से पूर दिया है दिशाओं के विभाग को जिसने, ऐसा (**त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूतिदक्षः**) तीनों लोकों के जीवों को शुभ समागम की सम्पत्ति देने में समर्थ और (**सद्धर्म-राज-जय घोषण-घोषकः**) समीचीन जैनधर्म के स्वामी की जयघोषणा को घोषित करने वाला (**दुन्दुभिः**) दुन्दुभि बाजा (**ते**) आपके (**यशसः**) यश का (**प्रवादी सन्**) कथन करता हुआ (**खे**) आकाश में (**ध्वनति**) शब्द करता है।

समाधि भक्ति

तेरी छत्र छाया प्रभुजी, मेरे सिर पर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥
जिनवाणी रस पान करूँ मैं, जिनवर को ध्याऊँ ।
आर्य जनों की संगति चाहूँ, व्रत संयम पाऊँ॥
गुणी जनों के सद्गुण गाऊँ, जिनवर यह वर दो।
मेरा अंतिम १

पर निंदा न मुख से निकले, मधुर वचन बोलूँ।
हृदय तराजू पर हितकारी, संभाषण तोलूँ ॥
आत्म तत्त्व की रहे भावना, भाव विमल कर दो।
मेरा अंतिम २

जिनशासन से प्रीति बढ़ाऊँ, मिथ्यातम छोड़ूँ।
चिदानंद चैतन्य भावना, जिनमत से जोड़ूँ ॥
जनम-जनम में, जैनधर्म ये, मिले कृपा कर दो।
मेरा अंतिम ३

मरण समय गुरु पाद मूल हो, संत समूह रहे।
जिनालयों में जिनवाणी की गंगा नित्य बहे ॥
भव-भव में, संन्यासमरण हो, नाथ हाथ धर दो।
मेरा अंतिम ४

बाल्यकाल से अब तक, मैंने जो सेवा की हो।
देना चाहो प्रभु आप तो, बस इतना फल दो॥
श्वास श्वास अंतिम श्वासों में, णमोकार भर दो।
मेरा अंतिम ५

विषय कषायों को मैं त्यागूं, तजूं परिग्रह को।
मोक्ष मार्ग पर बढ़ता जाऊँ, नाथ अनुग्रह हो॥
तन पिंजर से मुझे निकालो, सिद्धालय घर दो।
मेरा अंतिम ६

भद्रबाहु सम गुरु हमारे, हमें भद्रता दो।
रत्नत्रय संयम की शुचिता, हृदय सरलता दो॥
चन्द्रगुप्त-सी गुरु सेवा का पाठ हृदय भर दो ।
मेरा अंतिम ७

अशुभ न सोचूं, अशुभ न चाहूं, अशुभ नहीं देखूं ।
अशुभ सुनू ना, अशुभ कहूं ना, अशुभ नहीं लेखूं ॥
शुभ चर्या हो, शुभ क्रिया हो, शुद्ध भाव भर दो ।
मेरा अंतिम ८

तेरे चरण कमल द्वय जिनवर रहे हृदय मेरे।
मेरा हृदय रहे सदा ही, चरणों में तेरे ॥
पंडित-पंडित मरण हो मेरा, ऐसा अवसर दो।
मेरा अंतिम ९

दुःख नाश हो कर्म नाश हो, बोधि लाभ भर दो।
जिन गुण से प्रभु आप भरे हो, वह मुझमें भर दो ॥
यही प्रार्थना, यही भावना, पूर्ण आप कर दो।
मेरा अंतिम मरणसमाधि तेरे दर पर हो ॥...१०

ब्रह्मगुलाल मुनि

किसी नगर में ब्रह्मकुमार नाम का एक बहुरूपिया रहता था। वह अनेक प्रकार के रूप धर कर लोगों का मनोरंजन किया करता था। तथा उससे प्राप्त धन से अपनी आजीविका चलाता था। कभी वह शंकर का रूप तो कभी वह गणेश का तो कभी दुर्गा का, कभी भारत माता का, कभी पागल का, भिखारी का, राजाओं आदि का अनेक रूप धारण किया करता। रूप धारण करने पर यह नकली रूप है यह कहना कठिन हुआ करता था। पूरे राज्य में उसकी इस कला की खबर फैल चुकी थी। राज दरबार में राजा ने जब ब्रह्मगुलाल की बात सुनी तो उनका मन भी उत्कंठित हो उठा। उन्होंने ब्रह्मगुलाल को सभा में बुलाया और कहा – तुम हमें भी कोई अच्छा-सा रूप धरकर दिखाओगे।

ब्रह्मगुलाल ने राजा से हाथ जोड़कर निवेदन किया जो आज्ञा आप प्रदान करेंगे वैसा ही होगा। कहिए मैं किसका रूप बनाकर हाजिर होऊँ। तब राजा के साथ सभी सभासद बोल पड़े। क्यों न तुम शेर का रूप बनाकर आओ। तब ब्रह्मगुलाल सहम-सा गया फिर उसने निवेदन किया कि हे राजन्! सिंह के रूप के साथ यदि हिंसत्व जाग्रत हो गया व कुछ अनर्थ हो गया तो आप मुझे एक खून माफ का अभयदान दें तो मैं इस रूप को धर सकता हूँ। राजा द्वारा अभयदान मिलने पर वह तीसरे ही दिन सिंह का रूप धरकर सभा में दहाड़ता हुआ आया और राजा के समक्ष शांत भाव से बैठ गया। उसी क्षण राजा के बाजू में बैठे राजकुमार ने हँसी उड़ाते हुए कहा-अरे ये सिंह नहीं है गधा है। अन्यथा क्या यह इस तरह शांत बैठता। ब्रह्मगुलाल को इतना सुनना था कि उसके भीतर का सिंहत्व जाग उठा मेरी कला का अपमान असहनीय है और दहाड़ता हुआ छलांग लेकर सीधे राजकुमार के ऊपर झपट पड़ा। भयानक प्रहार से भयभीत हुआ राजकुमार ने अपने प्राण त्याग दिए। अब क्या ? सारी प्रजा में सन्नाटा छा गया। राजा भी उस कलाकार को कुछ न कह सका क्योंकि वह पहले ही उसे अभयदान दे चुका था।

इस घटना से राजा बहुत दुःखी रहने लगा। उसका किसी भी कार्य में मन नहीं लगता था। तब मंत्रियों ने कहा-हे राजन्! आप किसी दिगम्बर मुनि का सान्निध्य प्राप्त करें। उनके वचन सुनें निश्चित ही आपका मन हल्का हो जाएगा। क्योंकि गुरु की वाणी शीतल चंदन से भी कई गुना अधिक संताप को हरने वाली होती हैं। तब राजा ने पूछा कि इस समय मुनिराज के दर्शन कहाँ उपलब्ध हो सकेंगे। क्योंकि सभी पर्वतों में रत्न नहीं होते, सभी वनों में चंदन के वृक्ष नहीं होते एवं सभी हाथियों के मस्तक में मोती नहीं होते उसी प्रकार साधुओं का सान्निध्य सर्वत्र नहीं मिल सकता फिर क्या करें। तब मंत्रियों ने सलाह दी। क्यों न ब्रह्मगुलाल को ही बुलाकर उसे मुनि का रूप धरकर आने को कहा जाए। ऐसा ही ठीक होगा। विचारकर ब्रह्मगुलाल को बुलाया गया।

राजा ने जब अपनी बात रखी तो वह सोचने लगा यह तो बहुत कठिन होगा किन्तु राजा की आज्ञा और मेरी परीक्षा की घड़ी है। मुझे कुछ भी हो यह रूप बनाना ही होगा। उसने राजा से कहा कि-हे राजन्! इस रूप को धारण करने के लिए मुझे कुछ समय अपेक्षित है। अतः दो माह बाद मैं आपके समक्ष उपस्थित होऊँगा। आज्ञा लेकर वह वापस चला गया। दो माह बाद राजा दरबार में बैठा था अचानक दिगम्बर मुनिराज को देखकर वह सिंहासन से उठकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उन्होंने निवेदन कर उच्चासन पर विराजित किया। स्वयं नीचे बैठे। फिर निवेदन करने लगा-हे स्वामिन्! मुझे यथार्थ ऐसा उपदेश प्रदान करें जिससे मेरा दुख दूर हो सके।

मुनिराज बोले-हे राजन् संसार में जितने भी दृश्यमान पदार्थ हैं वे सभी निश्चित ही नष्ट होने वाले हैं, प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए कर्मों के फलों को भोक्ता है। अतः विचार करो जब अपना शरीर ही अपना नही रहता तो अपने से भिन्न पुत्र, स्त्री आदि कैसे अपने हो सकते हैं। अतः सारे विकल्प जालों को छोड़ तुम निजात्मा की खोज में अपने उपयोग को लगाओ क्योंकि वह ही शाश्वत एवं अपनी वस्तु है। मुनि के वचन सुन राजा को संतोष हुआ, उसके मन में संसार के प्रति वैराग्य एवं आत्म तत्त्व के प्रति रुचि जाग्रत होने लगी। राजा ने साधु को नमस्कार कर कहा- आपके वचनामृत से निश्चित ही मेरे मन का बोझ हल्का हुआ। धन्य हैं आप और आपकी कला। ऐसा कहते हुए उसने मंत्री को संकेत किया कि कलाकार को मुँह मांगा पारितोषक प्रदान किया जाए। इतना सुनते ही ब्रह्मगुलाल मुनि ने पिच्छी कमण्डलु उठाया और महल के बाहर जाने लगे। जब सैनिकों ने रोका और पूछा क्या कारण है, आप यूँ ही क्यों चले? तब मुनिराज बोले – हे राजन्! दुनिया के कितने ही रूप बदले जा सकते हैं, किन्तु यह दिगम्बर रूप ऐसा रूप है जिसे एक बार धारण करने के बाद बदला नहीं जा सकता। इतना कहकर वे वन की ओर चले गए और आत्मासाधना में लीन हो गए।